अर्धमागधी आगम साहित्य में श्रुतदेवी सरस्वती

प्रो. सागरमल जैन

जैन धर्म आध्यात्मप्रधान, निवृत्तिपरक एवं संन्यासमार्गी धर्म है। इस धर्म के आराध्य अर्हत् रहे हैं। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों और विशेष रूप से अर्धमागधी आगम साहित्य में हमें साधना की दृष्टि से अर्हतों की उपासना के ही निर्देश मिलते हैं। यद्यपि अर्धमागधी आगम साहित्य में कहीं-कहीं यक्षों के निर्देश हैं, किन्तु श्रमण परम्परा के मुनियों द्वारा उनकी आराधना और उपासना करने के कहीं कोई निर्देश नहीं है। यद्यपि कुछ प्रसंगों में अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए गृहस्थों के द्वारा इन यक्षों की पूजा के कुछ निर्देश अवश्य मिलते हैं, फिर भी यह जैन साधना का अंग रहा हो, ऐसा कोई भी निर्देश हमें प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि कालान्तर में जैन धार्मिक अनुष्ठानों में इनकी आराधना या पूजा के निर्देश अवश्य प्राप्त होते हैं, सर्वप्रथम मथुरा के एक जैन आयागपट्ट (प्रायः ईसा की दूसरी शती) पर एक देवी प्रतिमा का अंकन है। उसके सान्निध्य में एक जैन श्रमण खड़ा है और पास ही कुछ उपासक एवं उपासिकाएँ भी हाथ जोड़े खड़े हैं, किन्तु यह देवी कौन है ? इसका निर्णय नहीं हो सका। अभिलेख में इसका नाम आर्यावती है, किन्तु कुछ विद्वानों ने इसे तीर्थंकर माता भी कहा है (देखे चित्र १)। अर्धमागधी आगम साहित्य में सर्वप्रथम महाविद्याओं का उल्लेख है, किन्तु चौबीस शासनदेवता या यक्षियों के निर्देश परवर्ती जैन ग्रन्थों में ही उपलब्ध हुए हैं, किन्तु अर्धमागधी आगम, उनकी निर्युक्ति और भाष्य भी इस सम्बन्ध में मौन हैं। यह सब परवर्ती कालीन अर्थात् ईसा की सातवी शती के बाद ही है।

प्राचीन स्तर के जैन ग्रन्थ सूत्रकृतांग (२/२/१८) एवं ऋषिभाषित में विद्याओं के उल्लेख तो अवश्य हैं, किन्तु वहाँ वे मात्र विशिष्ट प्रकार की ज्ञानात्मक या क्रियात्मक योग्यताएँ, क्षमताएँ या शक्तियाँ ही हैं, जिनमें भाषाज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से लेकर अन्तर्ध्यान होने तक की कलाएँ हैं, किन्तु कालान्तर में तान्त्रिक प्रभाव के कारण जैनों में सोलह विद्यादेवियों, चौबीस यक्ष-यक्षियों, चौबीस कामदेवों, नव नारदों और ग्यारह रुद्रों, अष्ट या नौ दिक्पाल, लोकान्तिक देवों, नवग्रह, क्षेत्रपाल, चौंसठ इन्द्रों और चौंसठ योगनियों की कल्पना भी आई, किन्तु उपरोक्त जैन देवमण्डल में भी सरस्वती का उल्लेख नहीं है। जैन धर्म में प्रारम्भ में जो सोलह महाविद्याएं मानी गई थीं, वे भी कालान्तर में चौबीस में सम्मिलित कर ली गई और यह मान लिया गया कि चौबीस तीर्थंकरों के शासन-रक्षक चौबीस यक्ष और चौबीस यक्षणियाँ होती हैं, लेकिन आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि चौबीस शासन देवता या यक्षियों में भी कहीं भी सरस्वती एवं लक्ष्मी का उल्लेख नहीं है। यद्यपि प्राचीन काल से ही जैनों में ये दोनों देवियाँ प्रमुख रही हैं, क्योंकि सर्वप्रथम तीर्थंकरों की माताओं के सोलह या चौदह स्वप्नों में चौथे स्वप्न के रूप में श्री देवी या लक्ष्मी का उल्लेख मिलता है। मात्र इतना ही नहीं, उसके मूलपाठ में एवं उसकी परवर्ती टीकाओं में उसके स्वरूप का विस्तृत विवरण भी है। यद्यपि यहाँ उसकी उपासना विधि की कहीं कोई चर्चा नहीं है। जहाँ तक सरस्वती का प्रश्न है, अर्धमागधी आगम साहित्य में भगवतीसूत्र के पन्द्रहवें शतक के प्रारम्भ में **''नमो सुयदेवयाए भगवइए''** के रूप में श्रुतदेवी सरस्वती को नमस्कार करने का उल्लेख है। इसी प्रकार भगवतीसूत्र के आद्य मंगल में यद्यपि **'नमो बंभीए लिवीए'** कहकर ब्राह्मी लिपि को और **'नमो सुयस्स'** कहकर श्रुत को नमस्कार किया गया है, किन्तु वहाँ श्रुतदेवता का उल्लेख नहीं है। भगवतीसूत्र के आद्य मंगल एवं पन्द्रहवें शतक के प्रारम्भ में मध्यमंगल के रूप में, जो श्रुत या श्रुतदेवता (सरस्वती) का उल्लेख है, उसे विद्वानों ने परवर्ती प्रक्षेप माना है, क्योंकि भगवतीसूत्र की वृत्ति में उसकी वृत्ति (टीका) नहीं है। भगवतीसूत्र का वर्तमान में उपलब्ध पाठ वल्लभी वाचना में ही सुनिश्चित हुआ है। यद्यपि भगवतीसूत्र के मूलपाठ में अनेक अंश प्राचीन स्तर के हैं, ऐसा भी विद्वानों ने माना, किन्तु वल्लभीवाचना के समय उसके पाठ में परिवर्तन, प्रक्षेप और विलोपन भी हुए हैं। अतः यह कहना कठिन है, कि भगवतीसूत्र में आद्यमंगल एवं मध्यमंगल के रूप में जो श्रुत या श्रुतदेवता को नमस्कार किया है वह प्राचीन ही होगा। भगवतीसूत्र के प्रारम्भ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आद्यमंगल के रूप में पंचपरमेष्ठि के पश्चात् **'नमो बंभीए लिवीए'** और **'नमो सुयस्स'** ये पाठ मिलते हैं । यहाँ ब्राह्मी लिपि और श्रुत को नमस्कार है, किन्तु श्रुतदेवता को नहीं है । अतः श्रुतदेवता की कल्पना कुछ परवर्ती है । संभवतः हिन्दू देवी सरस्वती की कल्पना के बाद ही सर्वप्रथम जैनों ने श्रुतदेवता के रूप में सरस्वती को मान्यता दी होगी ।

यद्यपि मथुरा से मिले पुरातात्त्विक साक्ष्य इसके विपरीत है, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि विश्व में सरस्वती की कोई सबसे प्राचीन प्रतिमा है तो वह जैन सरस्वती ही है (देखे – चित्र २) । वर्तमान में उपलब्ध सरस्वती की यह प्रतिमा मस्तकविहीन होकर भी हाथ में पुस्तक धारण किए हुए हैं एवं ब्राह्मी लिपि के अभिलेख में 'सरस्वती' के उल्लेख से युक्त है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में जैन परम्परा में श्रुतदेवी या सरस्वती की उपासना प्रारम्भ हो गई थी । मथुरा से प्राप्त इस सरस्वती की प्रतिमा में सरस्वती को द्विभुजी के रूप में ही अंकित किया गया है, किन्तु उसके एक हाथ में पुस्तक होने से यह भी स्पष्ट है कि वह सरस्वती या श्रुतदेवी की ही प्रतिमा है । यह स्पष्ट है कि जैनों में प्रारम्भिक काल में सरस्वती की श्रुतदेवी के रूप में ही उपासना की जाती थी । अन्य परम्पराओं में भी उसे वाक्देवी कहा ही गया है, यद्यपि भगवतीसूत्र के नवम् शतक के ३३ वें उद्देशक के १४९ सूत्र में 'सरस्वती' शब्द आया है । किन्तु वहाँ वह जिनवाणी का विशेषण ही है । इसी शतक के इसी उद्देशक के १६३ वें सूत्र में भी ''सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ धम्मं परिकहेइ'' इससे वह जिनवाणी (श्रुतदेवता) ही सिद्ध होती है । इसके अतिरिक्त भगवतीसूत्र के १० वे शतक में असुरकुमारों में गन्धर्व-इन्द्र गीतरति की चार अग्रमहिषियों में भी एक का नाम 'सरस्वती' उल्लेखित है । इसी प्रकार ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुत स्कन्ध के पंचम वर्ग के ३२ अध्ययनों में ३२ वे अध्ययन का नाम भी 'सरस्वती' है । यहाँ एक देवी के रूप में ही उसका उल्लेख हैं, किन्तु ये सभी उल्लेख अति संक्षिप्त हैं । इसी क्रम में अंगसूत्रों में विपाकसूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध 'सुखविपाक' के दूसरे अध्ययन में ऋषभपुर नगर के राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की रानी का नाम भी सरस्वती के रूप में उल्लेखित है, किन्तु भगवतीसूत्र के नवम शतक में उल्लेखित जिनवाणी के साथ इसका कोई साम्य नहीं देखा जा सकता है । यह तो केवल एक सामान्य स्त्री है । यहाँ मात्र नाम की समरूपता ही है । स्थानांगसूत्र में भी गन्धर्वों के इन्द्र गीतरति की पत्नी का नाम सरस्वती उल्लेखित है, जो भगवतीसूत्र के १० वें शतक के उल्लेख की ही पुष्टि करता है ।

इन आधारों पर हम इतना ही कह सकते हैं कि अर्धमागधी आगम साहित्य में प्रारम्भ में सरस्वती का उल्लेख मूलतः जिनवाणी या श्रुत के विशेषण के रूप में ही हुआ है । यद्यपि अर्धमागधी आगम साहित्य में 'नमो सुयदेवयाए भगवईए' इतना ही पाठ है । किन्तु यह श्रुतदेवता सरस्वती रही होगी, ऐसी कल्पना की जा सकती है क्योंकि भगवतीसूत्र (९/३३/१४९ तथा १६३) में सरस्वती-जिनवाणी के एक विश्लेषण के रूप में उल्लेखित है । सर्वप्रथम जिनवाणी रूप श्रुत (सुय) को स्थान मिला और उसे 'नमो सुयस्स' कहकर प्रणाम भी किया गया । कालान्तर में इसी श्रुत के अधिष्ठायक देवता के रूप में श्रुतदेवी की कल्पना आई होगी और उस श्रुतदेवी को भगवती कहकर प्रणाम किया गया । किन्तु यह सब एक कालक्रम में ही हुआ होगा । श्रुत से श्रुतदेवता और श्रुतदेवता से सरस्वती का समीकरण एक कालक्रम में हुआ होगा ।

इसी क्रम में श्रुतदेवता को भगवती विशेषण भी मिला और इस प्रकार श्रुतदेवी को भगवती सरस्वती मान लिया गया । ज्ञातव्य है कि 'भगवती' और 'भगवान' शब्द का प्रयोग भी अर्धमागधी आगम साहित्य में मात्र आदरसूचक ही रहा है वह देवत्व का वाचक नहीं है । क्योंकि प्रश्नव्याकरणसूत्र में अहिंसा को 'भगवती' (**अहिंसाए भगवईए**) और सत्य को 'भगवान' (**सच्चं खु भगवं**) कहा गया है । यहाँ ये व्यक्तिपरक नहीं मात्र अवधारणाएँ हैं । अतः प्राचीन काल में भगवती श्रुतदेवी भी मूलतः जिनवाणी के रूप में मान्य की गई होगी । यहाँ 'नमो' शब्द भी उसके प्रति आदर भाव प्रकट करने के लिए ही है - क्योंकि ऐसा आदरभाव तो '**नमो बंभीए लिवीए**' कहकर ब्राह्मी लिपि के प्रति भी प्रकट किया गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह कोई देव या देवी नहीं है ।

किन्तु यह ज्ञातव्य है कि जब जैन देवमण्डल में शासन-देवता एवं विद्या-देवियों का प्रवेश हुआ तो उसके परिणाम स्वरूप 'श्रुत-देवता' की कल्पना भी एक 'देवी' के रूप में हुई और उसका समीकरण हिन्दू देवी सरस्वती से बैठाया गया । यह कैसे हुआ ? इसे थोड़े विस्तार से समझने की आवश्यकता है । जिनवाणी 'रसवती' होती है । अतः सर्वप्रथम सरस्वती को जिनवाणी का विशेषण बनाया गया (स+रस+वती) । फिर सरस्वती श्रुतदेवता या श्रुतदेवी बनी और अन्त में वह सरस्वती नामक एक देवी के रूप में मान्य हुई । अज्ञान का नाश करने वाली देवी के रूप में उसकी उपासना प्रारम्भ हुई । भगवतीसूत्र की लिपिकार (लहिये) की अन्तिम प्रशस्ति गाथाओं ईसा की ५ वीं शती पश्चात् हमें एक गाथा उपलब्ध होती है - जिसमें सर्वप्रथम गौतम गणधर को, फिर व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) को, तदनन्तर द्वादश गणिपिटक को नमस्कार करके, अन्त में श्रुतदेवी को उसके विशेषणों सहित न केवल नमस्कार किया गया, अपितु उससे मति-तिमिर (मति-अज्ञान) को समाप्त करने की प्रार्थना की गई । वह गाथा इस प्रकार है-

कुमुय सुसंठियचलणा अमलिय कोंरट विंट संकासा ।
सुयदेवयाभगवती मम मतितिमिरं पणासेउ ॥

- भगवतीसूत्र के लिपिकार की उपसंहार गाथा-२

कुमुद के ऊपर स्थित चरणवाली तथा अम्लान (नहीं मुरझाई हुई) कोरंट की कली के समान, भगवती श्रुतदेवी मेरे मति (बुद्धि अथवा मति-अज्ञानरूपी) अन्धकार को विनष्ट करे ।

वियसियअरविंदकरा नासियतिमिरा सुयाहिया देवी ।
मज्झं पि देउ मेहं बुहविबुहणमंसिया णिच्चं ॥

जिसके हाथ में विकसित कमल है, अथवा विकसित कमल जैसे करतलवाली, जिसने अज्ञानान्धकार का नाश किया है, जिसको बुध (पण्डित) और विबुधों (विशेष प्रबुद्ध) ने सदा नमस्कार किया है, ऐसी श्रुताधिष्ठात्री देवी मुझे भी बुद्धि (मेघा) प्रदान करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुयदेवयाए णमिमो जीए पसाएण सिक्खियं नाणं ।
अण्णं पवयणदेवी संतिकरी तं नमसांमि ॥

जिसकी कृपा से ज्ञान सीखा है, उस श्रुतदेवता को प्रणाम करता हूँ तथा शान्ति करने वाली अन्य प्रवचनदेवी को नमस्कार करता हूँ ।

सुयदेवा य जक्खो कुंभधरो बंभसंति वेरोट्टा ।
विज्जा य अंतहुंडी देउ अविग्घं लिहंतस्स ॥

श्रुतदेवता, कुम्भधरयक्ष, ब्रह्मशान्तियक्ष, वैरोटयादेवी, विद्यादेवी और अन्तहुंडीयक्ष, लेखक के लिए अविघ्न (निर्विघ्नता) प्रदान करे ।

भगवती की लिपिकार (लेखक) की इस प्रशस्ति में श्रुतदेवता से अज्ञान के विनाश तथा श्रुतलेखन कार्य की निर्विघ्नता की कामना की गई।

यद्यपि अर्धमागधी आगम साहित्य की यह प्रशस्ति श्रुतदेवी या ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सरस्वती का उल्लेख करती है, किन्तु हमे यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि यह ईसा की पांचवी से दसवीं शताब्दी के मध्य हुआ है और जिनवाणी से ही श्रुत, श्रुतदेवी और सरस्वती की अवधारणाएँ विकसित हुई है ।

यहाँ हमें यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अर्धमागधी आगम साहित्य मात्र अंग, उपांग आदि अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य पैंतालीस या बत्तीस श्वेताम्बर परम्परा के मान्य आगम ग्रन्थों तक ही सीमित नहीं है । आगमों की निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियां भी इसी के अन्तर्गत आती है, क्योंकि इनकी भाषा भी महाराष्ट्री-प्रभावित अर्धमागधी ही है । अतः आगे हम निर्युक्ति और भाष्यों के आधार पर भी श्रुतदेवी या सरस्वती की अवधारणा पर चर्चा करेंगे ।

जहाँ तक अर्धमागधी आगमों के इस व्याख्या साहित्य का प्रश्न है, उसमें निर्युक्ति साहित्य एवं भाष्य साहित्य में मंगलाचरण के रूप में हमें कहीं भी श्रुतदेवता की स्तुति की गई हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिला । इनमें मात्र चार सरस्वतियों के उल्लेख हैं - १. गीतरति गन्धर्व की पत्नी, २. ऋषभपुर के राजा की पत्नी, ३. सरस्वती नामक नदी और, ४. आचार्य कालक की बहन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरस्वती । किन्तु इन चारों का सम्बन्ध सरस्वती देवी से नहीं है । जहाँ तक भाष्य शब्द साहित्य की टीकाओं का प्रश्न है, अभिधानराजेन्द्रकोष में पंचकल्प भाष्य की टीका को उद्धृत करके श्रुतदेवता शब्द को व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि श्रुत का अर्थ है अर्हत् प्रवचन, उसका जो अधिष्ठायक देवता होता है, उसे श्रुतदेवता कहते हैं । इस सम्बन्ध में अभिधानराजेन्द्रकोष में कल्पभाष्य से निम्न गाथा भी उद्धृत की है-

सव्वं च लक्खणो-वेयं, समहिदुंति देवता ।
सुत्तं च लक्खणोवेयं, जेय सव्वण्णु-भासियं ॥

यद्यपि मुझे बृहत्कल्पभाष्य में यह गाथा नहीं मिली । संभवतः पंचकल्पभाष्य की होगी, क्योंकि उन्होंने यदि इसे उद्धृत किया है तो इसका कोई आधार होना चाहिए । संभवतः यह पंचकल्पभाष्य से उद्धृत की गई हो ! इसमें श्रुत का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि जो सर्वज्ञभाषित है, वह श्रुत है और जो उसे सर्वलक्षणों से जानता है या अधीत करता है, वह श्रुतदेवता है । भाष्यसाहित्य में श्रुतदेवता या सरस्वती का अन्य कोई उल्लेख है, ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है । यद्यपि भाष्यसाहित्य से किंचित् परवर्ती पंचसंग्रह नामक ग्रन्थ के पंचमद्वार रूप पाँचवे भाग में श्रुत देवता के प्रसाद की चर्चा हुई है । अभिधानराजेन्द्रकोष में उसकी निम्न गाथा उद्धृत की गई है -

सुयदेवता भगवई, नाणावरणीयकम्मसंघायं ।
तेसिं खवेउ सययं, जेसिं सुयसायरे भत्ती ॥

इस गाथा का तात्पर्य यह है कि - "जिसकी श्रुत सागर में भक्ति है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म के समूह को श्रुत देवता सतत रूप से क्षीण करे।" इस गाथा की वृत्ति में टीकाकार ने यह स्पष्ट किया है कि यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि वस्तुतः कर्मों का क्षय श्रुतदेवता के कारण से नहीं, अपितु श्रुतदेवता के प्रति रही हुई भक्ति-भावना के कारण होता है । इसी प्रसंग में वृत्तिकार ने श्रुत के अधिष्ठायक देवता को व्यन्तर देवयोनि का बताया है और यह कहा है कि वह साधक के ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षय करने में समर्थ नहीं है । श्वेताम्बर परम्परा में प्रतिक्रमणसूत्र में पांचवे आवश्यक में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतदेवता के निमित्त कायोत्सर्ग किया जाता है **'सुयदेवयाए करेमि काउसग्गं'** वस्तुतः वह कायोत्सर्ग भी श्रुतभक्ति का ही एक रूप है और यह ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षय का निमित्त भी होता है, क्योंकि जैन सिद्धान्त व्यक्ति के कर्मों का क्षय का हेतु तो स्वयं के भावों को ही मानता है । फिर भी देवों से इस प्रकार की प्रार्थनाएँ जैन ग्रन्थों में अवश्य मिलती है । जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं, भगवतीसूत्र की लेखक प्रशस्ति में भी अज्ञानरूपी तिमिर की नाश की प्रार्थना श्रुतदेवता से की गई है ।

श्वेताम्बर परम्परा में मान्य अर्धमागधी आगमों में महानिशीथ सूत्र सबसे परवर्ती माना जाता है । इसके सम्बन्ध में मूलभूत अवधारणा यह है कि इसकी एकमात्र दीमकों द्वारा भक्षित प्रति के आधार पर आचार्य हरिभद्र (लगभग आठवीं शती) ने इसका उद्धार किया । चाहे मूल ग्रन्थ किसी भी रूप में रहा हो, किन्तु इसका वर्तमानकालीन स्वरूप तो आचार्य हरिभद्र के काल का है, यद्यपि इसका कुछ अंश प्राचीन हो सकता है, किन्तु कौन सा अंश प्राचीन है और कौन सा परवर्ती है, यह निर्णय पर पाना कठिन है। अर्धमागधी आगमों में यह एक ऐसा ग्रन्थ है जो स्पष्ट रूप से श्रुतदेवता (श्रुतदेवी) का उल्लेख करता है । इसके प्रारम्भिक अध्ययन में ३ गद्यसूत्रों के पश्चात् ४ से ५० तक गाथाएँ है । उसके पश्चात् पुनः ५१ वां गद्यसूत्र है। उसमें कोष्टबुद्धि आदि ज्ञानियों को नमस्कार करने के पश्चात् **'नमो भगवतीए सुयदेवाए सिज्झउ में सुयाहिया विज्जा'** इस रूप में श्रुतदेवता (श्रुतदेवी) को नमस्कार करके उससे यह प्रार्थना की गई है कि सूत्र अधीत विद्या मुझे सिद्ध हो । पुनः यह भी कहा गया है कि- **'एसा विज्जा सिद्धंतिएहिं अक्खरेहिं लिखिया एसा य सिद्धंतिया लिवी अमुणियसमयसब्भावाणं सुयधरेहिं णं न पन्नवेज्जा तह य कुसीलाणं च'** – यह लिखित विद्या श्रुतधरों को ही प्रज्ञप्त करे कुशीलों को नहीं । पुनः महानिशीथसूत्र के अन्तिम आठवें अध्याय में चौबीस तीर्थंकरों और तीर्थ को नमस्कार करने के पश्चात् **'नमो सुयदेवयाए भगवईए'** कहकर श्रुतदेवता (श्रुतदेवी) को नमस्कार किया गया है । श्रुतदेवता कोई देवता या देवी है, यह बात आगमिक परम्परा में कालान्तर में ही स्वीकृत हुई है, क्योंकि जैसा हमने पूर्व में कहा है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन आगमों में तो सरस्वती या श्रुतदेवता जिनवाणी ही रही है । महानिशीथसूत्र में ही सर्वप्रथम यह कहा गया कि श्रुतदेवता मेरी अधीत विद्या को सिद्धि प्रदान करें । श्रुतदेवता एक देवी है, ऐसा उल्लेख सर्वप्रथम महानिशीथसूत्र के उद्धारक आचार्य हरिभद्र (८ वी शती) ने अपने ग्रन्थ पंचाशक प्रकरण में किया है। उसमें कहा गया है कि-

रोहिणि अंबा तह मंदउण्णया सव्वसंपयासोक्खा ।
सुयसंतिसुरा काली सिद्धाईया तहा चेव ॥

रोहिणी, अम्बा, मन्दपुण्यिका, सर्वसम्पदा, सर्वसौख्या, श्रुतदेवता, शान्तिदेवता, काली, सिद्धायिका - ये नौ देवता है । इसकी टीका में भी श्रुतदेवता की आराधना हेतु तप करने की विधि बताते हुए कहा गया है कि श्रुतदेवता की आराधना हेतु किए जाने वाले तप में ग्यारह एकादशी पर्यन्त उपवासपूर्वक मौन व्रत रखना चाहिए तथा श्रुतदेवता की पूजा करनी चाहिए। ज्ञातव्य है कि पूर्व में उल्लेखित पंचकल्पभाष्य में भी श्रुतदेवता को व्यन्तर जाति के देव बताया गया है ।

मेरी जानकारी में अर्धमागधी आगम साहित्य में इसके अतिरिक्त श्रुतदेवी या सरस्वती का कोई उल्लेख नहीं । उसमें अनेक जाति के देव-देवियों के उल्लेख तो हैं, किन्तु सरस्वती या श्रुतदेवी की मात्र जिनवाणी के रूप में ही चर्चा है, किसी देव या देवी के रूप में नहीं है । वह व्यन्तर देवी है, यह उल्लेख भी परवर्ती है । यद्यपि जैन सरस्वती की विश्व में सबसे प्राचीन प्रतिमा मथुरा से उपलब्ध होने से पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर इतना तो कहा जा सकता है कि जैनों में सरस्वती या श्रुतदेवी की अवधारणा प्राचीन किन्तु साहित्यिक उल्लेख परवर्ती युग के हैं । सर्वप्रथम हमें आगमेतरग्रन्थ पउमचरियं (विमलसूरि) एवं अंगविज्जा में उसके एक देवी के रूप में उल्लेख मिलते हैं । पउमचरियं (३/५९) में सरस्वती का उल्लेख बुद्धिदेवी के रूप में हुआ है जो इन्द्र की आज्ञासे तीर्थकरमाता की सेवा करती है । अंगविज्जा (५८ पृ. २२३) में भी उसे एक देवी माना गया है । इन दो उल्लेखों बाद सरस्वती का सीधा उल्लेख हरिभद्र के ८वीं शती के ग्रन्थों में ही मिलता है। अंगविज्जा और पउमचरियं का काल लगभग ईसा की दूसरी का माना गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(II)

जैनधर्म में सरस्वती

हम अपने पूर्व आलेख – ''अर्धमागधी आगम साहित्य में श्रुतदेवी सरस्वती'' में स्पष्ट रूप से यह देख चुके हैं कि श्वेताम्बर परम्परा में मान्य अर्धमागधी आगमों में तथा उनकी निर्युक्तियों और भाष्यों तक भी एक देवी के रूप में सरस्वती की अवधारणा अनुपस्थित है। भगवतीसूत्र में सरस्वती (स+रस+वती) पद का प्रयोग मात्र जिनवाणी के विशेषण के रूप में हुआ है और उस जिनवाणी को रस से युक्त मानकर यह विशेषण दिया गया है। यद्यपि उसमें भगवती श्रुतदेवता (सुयदेवयाए भगवइए) के कुछ प्रयोग मिले हैं, परन्तु वे भी जिनवाणी के अर्थ में ही है। जिनवाणी के साथ देवता और भगवती शब्दों का प्रयोग मात्र आदरसूचक हैं। किसी 'देवी' की कल्पना के रूप में नहीं है। श्रुतदेवता (श्रुतदेवी) की कल्पना प्राचीन स्तर के आगमों की अपेक्षा कुछ परवर्ती है। सर्वप्रथम पउमचरियं (ई. २री शती) में ही, श्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी को देवी कहा गया है, जो इन्द्र के आदेश से तीर्थंकर माता की सेवा करती हैं (३/५९)। इसके साथ ही अंगविज्जा (लगभग २री शती) में भी बुद्धि की देवता के रूप में 'सरस्वती' का उल्लेख है।[१] जबकि जैन देवमण्डल, जिसमें सोलह विद्यादेवियाँ, चौबीस यक्ष, चौबीस यक्षियाँ (शासनदेवता), अष्ट या नौ दिक्पाल, चौंसठ इन्द्र, लोकान्तिकदेव, नवग्रह, क्षेत्रपाल (भैरव) और चौंसठ योगनियाँ भी सम्मिलित हैं, कहीं भी सरस्वती का उल्लेख नहीं है। यह आश्चर्यजनक इसलिए है, अनेक हिन्दू देव-देवियों को समाहित करके जैनों ने जिस देवमण्डल का विकास किया था, उसमें श्रुतदेवी सरस्वती को क्यों स्थान नहीं दिया गया ? जबकि मथुरा से उपलब्ध जैन स्तूप की पुरातात्विक सामग्री में विश्व की अभिलेखयुक्त प्राचीनतम जैन श्रुतदेवी या सरस्वती की प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि ईसा की द्वितीय शताब्दी से जैनों में सरस्वती

---

१. एकाणंसा सिरी, बुद्धि मेधा कित्ती सरस्वती एवमादियाओ उवलद्धाओ भवंति। अध्याय ५८, पृ. २२३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की आराधना प्रचलित रही होगी । क्योंकि इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कोटिकगण की वज्रीशाखा के जैनाचार्य द्वारा हुई है और 'सरस्वती' शब्द का भी उल्लेख है । इसके बाद श्वेताम्बर परम्परा में श्रुतदेवी के रूप में सरस्वती के उल्लेख हरिभद्र (८ वी शती) और उनके बाद आचार्यों के काल से ही मिलते हैं। तीसरी-चौथी शती से लेकर सातवीं तक हमें सरस्वती के उल्लेख नहीं मिले। पंचकल्पभाष्य की टीका में उसे व्यन्तर देवी के रूप में उपस्थित किया गया, जो अधिक सम्मानप्रद नहीं था, किन्तु हरिभद्र ने उसकी उपासना विधि में उसे वैराट्या, रोहिणी, अम्बा, सिद्धायिका, काली आदि शासनदेवियों के समकक्ष दर्जा देकर उसका महत्त्व स्थापित किया है, क्योंकि काली, अम्बा, सिद्धायिका आदि को जैनधर्म में शासनदेवता का सम्मान प्राप्त है । श्वेताम्बर परम्परा में श्रुतदेवी सरस्वती की उपासना-विधि के साहित्यिक प्रमाण लगभग ८ वी शती से मिलने लगते हैं ।

जहाँ तक सरस्वती की प्रतिमा के पुरातात्विक प्रमाणों का प्रश्न है, वे प्रथमतया तो मथुरा से उपलब्ध सरस्वती की प्रतिमा के आधार पर ईसा की द्वितीय शती से मिलने लगते हैं, किन्तु जैन परम्परा में बहुत ही सुन्दर सरस्वती प्रतिमाएँ पल्लू (बिकानेर) और लाडनू आदि से उपलब्ध हैं, जो ९वीं, १०वीं शती के बाद की हैं ।

जहाँ तक अचेल दिगम्बर परम्परा का प्रश्न हैं, उसमें भी श्रुतदेवी सरस्वती के उल्लेख पर्याप्त परवर्ती हैं । कसायपाहुड, षट्खण्डागम, मूलाचार, भगवती आराधना, तिलोयपन्नत्ती, द्वादश अनुप्रेक्षा (बारसाणुवेक्खा) एवं कुन्दकुन्द के ग्रन्थ समयसार, नियमसार, पंचास्तिकायसार, प्रवचनसार आदि में हमें कहीं भी आद्यमंगल में श्रुतदेवता सरस्वती का उल्लेख नहीं मिला है। यहाँ तक कि तत्त्वार्थ की टीकाओं जैसे सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक में तथा षट्खण्डागम की धवलाटीका और महाबन्ध टीका में भी मंगल रूप में श्रुतदेवी सरस्वती का उल्लेख नहीं है । महाबन्ध और उसकी टीका में मंगल रूप में जिन ४४ लब्धिपदों का उल्लेख है - उनमें भी कहीं सरस्वती या श्रुतदेवता का नाम नहीं है । ज्ञातव्य है ये ही लब्धिपद, श्वेताम्बर परम्परा में सूरिमन्त्र के रूप में तथा प्रश्नव्याकरण नामक अंग आगम में भी उपलब्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं । जिनमें अनेक प्रकार के लब्धिधरो एवं प्रज्ञाश्रमणों के उल्लेख हैं, किन्तु उनमें भी श्रुतदेवी सरस्वती का कोई उल्लेख नहीं है । विद्वत्वर्ग के लिए यह विचारणीय और शोध का विषय है ।

जहाँ तक मेरी जानकारी है, दिगम्बर परम्परा में सर्वप्रथम पं. आशाधर (१३ वीं शती) ने अपने ग्रन्थ सागारधर्मामृत में श्रुतदेवता की पूजा को जिनपूजा के समतुल्य बताया है । वे लिखते हैं-

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽञ्जसा जिनं ।
तं किञ्चिदन्तरं प्राहुरात्मा हि श्रुतदेवयोः ॥२/४४॥

मेरी जहाँ तक जानकारी है, दिगम्बर परम्परा में कुन्दकुन्द प्रणीत मानी जाने वाली दस भक्तियों में श्रुतभक्ति तो है, किन्तु वह श्रुतदेवी सरस्वती की भक्ति है, यह नहीं माना जा सकता है । 'श्रुतदेवयोः' यह पद भी सर्वप्रथम सागार धर्मामृत में ही प्राप्त हो रहा है । मेरी दृष्टि में आचार्य मल्लिषेण विरचित 'सरस्वती मन्त्रकल्प' उस परम्परा में सरस्वती उपासना का प्रथम ग्रन्थ है । मेरी दृष्टि में यह ग्रन्थ बारहवीं शती के पश्चात् का ही है ।

जहाँ तक श्वेताम्बर परम्परा का प्रश्न है, मेरी जानकारी में उसमें सर्वप्रथम 'सरस्वतीकल्प' की रचना आचार्य बप्पभट्टीसूरि (लगभग १० वीं शती) ने की है । यह कल्प विस्तार से सरस्वती की उपासना विधि तथा तत्सम्बन्धी मन्त्रों को प्रस्तुत करता है । आचार्य बप्पभट्टीसूरि का काल लगभग १० वीं शती माना जाता है । श्वेताम्बर परम्परा में सरस्वती का एक अन्य स्तोत्र साध्वी शिवार्या का मिलता है इसका नाम 'पठितसिद्ध सारस्वतस्तव' है । साध्वी शिवार्या का काल क्या है ? यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। इसके पश्चात् श्वेताम्बर परम्परा में जिनप्रभसूरि (लगभग १३ वीं - १४ वीं शती) का श्रीशारदास्तवन मिलता है, यह आकार में संक्षिप्त है, इसमें मात्र ९ श्लोक हैं । इसके अतिरिक्त एक अन्य श्रीसरस्वती स्तोत्र उपलब्ध होता है, इसमें मात्र १७ श्लोक हैं । इसके कर्ता भी अज्ञात हैं । इनमें बप्पभट्टीसूरि का सरस्वती कल्प ही ऐसा है, जिसमें सरस्वती उपासना की समग्र पद्धति दी गई है । यद्यपि यह पद्धति वैदिक परम्परा से पूर्णतः प्रभावित प्रतीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती है ।

जहाँ तक सरस्वती के प्रतिमा लक्षणों का प्रश्न है । सर्वप्रथम खरतरगच्छ के वर्धमानसूरि (१४वीं शती) द्वारा रचित 'आचार दिनकर' नामक ग्रन्थ की प्रतिष्ठाविधि में निम्न दो श्लोक मिलते हैं -

ॐ ह्रीं नमो भगवती ब्रह्माणि वीणा पुस्तक ।
पद्माक्षसूत्रे हंसवाहने श्वेतवर्णे इह षष्ठि पूजने आगच्छ ॥

पुनः-

श्वेतवर्णा श्वेतवस्त्रधारिणी हंसवाहना श्वेतसिंहासनासीना चतुर्भुजा ।
श्वेताब्जवीणालङ्कृता वामकरा पुस्तकमुक्ताक्षमालालङ्कृतदक्षिणकरा ! ।

- आचार दिनकर प्रतिष्ठाविधि

जहाँ तक दिगम्बर परम्परा का प्रश्न है, उस परम्परा के ग्रन्थ 'प्रतिष्ठासारोद्धार' में सरस्वती के सम्बन्ध में निम्न श्लोक उपलब्ध हैं ।

वाग्वादिनी भगवति सरस्वती ह्रीं नमः, इत्यनेन मूलमन्त्रेण वेष्टयेत् ।
ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः इति वाग्देवतां स्थापयेत् ॥

- प्रतिष्ठासारोद्धार

दोनों परम्पराओं में मूलभूत अन्तर यह है कि श्वेताम्बर परम्परा में सरस्वती का वाहन हंस माना गया है, जबकि दिगम्बर परम्परा में मयूर । हंस विवेक का प्रतीक है सम्भवतः इसीलिए श्वेताम्बर आचार्यों ने उसे चुना हो । फिर भी इतना निश्चित है कि सरस्वती इन प्रतिमा लक्षणों पर वैदिक परम्परा का प्रभाव है । साथ ही उससे समरूपता भी है । मथुरा से प्राप्त जैन सरस्वती की प्रतिमा में मात्र एक हाथ में पुस्तक हैं, जबकि परवर्ती जैन सरस्वती मूर्तियों में वीणा प्रदर्शित हैं ।

C/o. प्राच्य विद्यापीठ
दुपाडा रोड,
शाजापुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवी आर्यावती का चित्र
(मथुरा)
लगभग २री शती.

अभिलेख का हिन्दी रूपान्तरण

वर्ष ५४ (शक् संवत्) के चतुर्थ मास (कार्तिक) की दशमी के सरस्वती की प्रतिमा सिंह के पुत्र गोवा ने आर्यहस्त-हस्ती के शिष्य गणी आर्य माघहस्ति के शिष्य वाचक आर्य देव केट्टिय स्थानीयकुल के सदुपदेश से सर्व लोगो के कल्याणार्थ स्थापित की ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org